'जिनालंकार' – एक प्राचीन स्तोत्रकाव्य

लेखक: प्रा: श्याम जोशी,
वाई जि:- सातारा (महाराष्ट्र)

'जिनालंकार' नामक एक प्राचीन काव्य का परिचय यहां दिया जा रहा है। लेकिन इधर 'जिन' शब्द का व्युत्पत्यर्थ याने 'इंद्रियोंपर विजय पानेवाला' ऐसा ही लेना है। क्योंकी इस काव्य का विषय है गौतम बुद्ध और भाषा है पालि। वैसे तो भगवान महावीर की उपाधी 'जिन' ऐसी रुढ है। और अनेक धर्मियोंने और सांप्रदायिकोने इस उपाधी का उपयोग वही और सही अर्थमे अपने अपने ग्रंथोंमे किया है। जैन धर्मने भी 'जिन' होने की ही महत्वाकांक्षा और आदर्श रखा और अनेक सांप्रदायिकों को इस वजह से अपना लिया है। इंद्रियोंपर विजय पाना यही श्रमण संस्कृती का साध्यसाधन बना रहा है। चाहे उस संस्कृती को अनेक संप्रदाय अपनी अपनी तरह से आत्मसात कर लें।

त्रिपिटकों को छोडकर बौद्धोंका अट्ठकथा नामक एक वाङमय प्रकार है। इसी प्रकार मे गिना गया ''जिनालंकार'' यह एक काव्य ब्राह्मी परंपराके अनुसार एक अट्ठकथा है। एक समयमे ब्रह्मदेशके प्रमुख मठोंमे इसका अभ्यास और पाठ होता था ग्रंथ के अंतमे इस काव्यकर्ताका उल्लेख बुद्धरख्खित ऐसा दिया है। वह श्रीलंकामे जन्मा हुआ (इ.स. पूर्व ४२६मे) एक विद्वान था। तम्बमणीके बौद्धभिक्षू परिषद का वह अध्यक्ष था। काव्य के टीकाके अनुसार 'जिनालंकार' नामक खजिना धारण करनेवाला 'भण्डारिक' था। इस खजिना या भण्डार का सारांश ऐसा है।:–

शुरुमे मंगलाचरण जैसी प्रणाम दोपनी गाथा लिखने के बाद कवी बुद्धकृतीका शुद्धत्व कहकर उसका अनन्य साधारणत्व कहता है। बुद्धकी महत्वाकांक्षा कहते समय सुमेधने दीपंकरके सामने देहका पूल कैसा बनाया इसका वर्णन आता है। बादमे बुद्ध माताके गर्भमे प्रवेश करता है। उसका जन्मोत्सव मनाने के लिये देव, नाग, असुर इत्यादी सर्व विश्व सम्मीलित हो जाता है। यशोधराके साथ राजैश्वर्यसंपन्न युद्ध का विवाह और पुत्रप्राप्ती होने के बाद गौतमके मनमे वैराग्य और जनमोक्ष के विचार आते हैं। इसलिये सर्वसंग परित्याग करके वह निर्वाणके मार्ग पर चल पडता है। इस वख्त कवीने अपना काव्यरचना कौशल्य दिखाने के लिये विविध यमक गाथा और पहेली गाथा दी हैं। प्रवासका सविस्तर वर्णन होने के बाद गौतम और मार का बोधिवृक्षतले युद्ध होता है और मारका पराजय वर्णित किया है। उनका संवाद बडा रोचक है। इस विजयके बाद बुद्ध को ज्ञानप्राप्ती हो जाती है और देवादिक सिद्धार्थ के ऊपर छत्रचादर धरते हैं। इसि पतन वनमे ब्रह्मके विनंती पर वह धर्मचक्र परिवर्तन करता है। उसके बाद युद्धका गुणगान व पूजाविधान आता है। इस समय वर्णित निसर्गसंपत्ती लक्षणीय है। अन्तमे स्वयं अनागत कालमे 'जिन' होने की इच्छा प्रकट की है।

मूलत: तीनसौ श्लोक की इस रचनाके अढाईसौ श्लोक उपलब्ध हैं। उनके ऊपर की टीका प्रसिद्ध टीकाकार युद्धघोष के समकालीन बुद्ध दत्तकी है। स्वयं कवीने भी इस काव्यपर टीका लिखी होगी। अर्थात् बुद्धदत्तके कारणही वर्तमान ग्रंथ सुरक्षित रहा है। श्रीलंकामे रहते हुअे और मगधको वापस आनेसे पूर्व उसने 'जिनालंकार'की नकल उतारी और उसके ऊपर टीका भी लिखी।

इस काव्यमे उपयोजित वृत्त लेखकका वृत्तोंपर का प्रभाव सूचित करते हैं। 'पथ्यावक्त्र' के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान ग्यारह अलगअलग वृत्तोंका उपयोग किया है। बहुतांश रचना इन्द्रवज्रा और उपवज्रा इत्यादी उपजातीमे की मिलती है। नियमबाह्य पद्यरचना क्वचितही मिलती है। भारतीय विद्वानोंने इस काव्य का आलंकारिक मूल्य उच्च प्रतीका माना है। उसका शब्द सौष्ठव उल्लेखनीय है। आर्यधन और प्रभावी शैली के साथ साथ तालबद्धता और वृत्तरचनाकी विविधता यह उसका वैशिष्ट्य है। पाली गलीमे 'मिलिन्द पन्हा' का जो स्थान है वही पाली पद्यमे 'जिनालंकार'का है। इसवी सन पूर्व चवथे शतकका काल महिमा ही ऐसा था की इसकी शैली संस्कृत लेखकोंकी तरह कृत्रिम है। उसमे प्रसादसे ज्यादा पांडित्य है। उदाहरण के लिये–

दिस्वा निमिज्ञानि मदच्छिदानि
श्रीनं बिरुरुपानि रताच्छदानि।
पापानि कम्मानि सुखच्छिदानि।
लच्छानि ञाणामि भवाच्छदानि।।४९।। और

'नाना सनामि सयनानि निवेसनानि इत्यादी ८५वा श्लोक देखिये। इसमे अंतरत्रिक खास है। ९६ वे श्लोक मे 'तथा हिमारोपि तदाहसन्तिं।' यह एकही चरण तीन बार इस्तमाल करके शब्द छलसे श्लोक साधा है।

पंदित्त गेहा बिय करेवं रवं
रवं समुदाय गतो महेसि।
महेसि मोलो किय पुत्तमत्तनो
तनोसि नो पेममहोद्यमत्तनो।। इस श्लोकमे प्रत्येक चरणका अन्तिम शब्द आगले चरणका पहला शब्द है। तो ९७ वे श्लोकमे 'सकामदाता विनयानमन्तगू' यही चरण चार बार अलग अलग अर्थमे आती है। १०५ से १०८ श्लोकों मे न, स, र, द, व, इन वर्णोंका इश्तेमाल करके विलक्षण अनुप्रास साध्य किया है। उनमेसे एकही देखें:-

नोनानिनो ननूनानि ननेनानि ननानिनो।
नुन्नानेनानि नून न नाननं नाननेन नो।।

यह श्लोक पढकर कारवीके ' न नोननुन्नो नुन्नोनो नानो इत्यादी श्लोक याद आता है। अपने श्लोकमे केवल नकार है। सौवे श्लोकमे

राजराजयसोपेत विसेसं रचितं मया।

यह पहला चरण उलटा पढा जाय तो–

यामतं चिरसंसेवित पेसो यजराजरा।

यह चरण तयार होता है। इसी प्रकार नमो तस्स यतो महिमतो यस्स तमो न।

यह पंक्ती उलटी या सुलटी पढी जाय तो वही अक्षरावली है। एक श्लोक मे सभीके सभी वर्ण कण्ठय उपयोजित है दिखे आकंखक्खाकं रवंग... इत्यादी एकसौ एकवा श्लोक। इस तरह संस्कृत जैसा कृत्रिमता का जंगल खडा करनेका सामर्थ्य प्राकृतमेही है इसका साक्षात्कार इधर होता है।

अर्थात् यह भक्ती रसात्मक काव्य है। बुद्ध के जीवनका दर्शन करते करते कवीने अपनी भाषाप्रभुता दिखायी है। इसका नित्यपठन अवश्य होता होगा। और पठनसे मनुष्यके जिव्हाको व्यायाम और मोड मिलता होगा। निरोगी वाणीके लिये अवश्य है। फिर पढनेवाला कोई भी संप्रदायका क्यों न हो। किसी भी महापुरुषके चरित्र का पढना मनुष्य मात्रके लिये अच्छे असरदायी है। इधर तो 'जिन' महात्माका एक सुंदर स्तोत्र है। इसलिये कवी के साथ प्रार्थना करे कीं–

'जिनो भविस्सामि अनागतेसु।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org